निमिस (इटली)
अप्रैल १७, १९९९

सन्देश संख्या २

पतंजलि सार (सूत्र–१,२,३ एवम् अंतिम)

प्रथम सूत्र

अथ योगानुशासनम्।

अब योगानुशासन प्रारम्भ होता है।

''अनुशासन'' शब्द की व्युत्पत्ति ''शिष्य'' शब्द से होती है क्योंकि शिष्य सीखने के लिए उन्मुख होता है और आध्यात्मिक संदर्भों में सीखने के लिए बहिर्मुखी सूचना के संकलन से विमुक्त होना अथवा पर्याप्त बंधन मुक्ति आवश्यक है। इस प्रकार यह सूत्र बंधन मुक्ति की प्रक्रिया हेतु एक आमंत्रण है।

द्वितीय सूत्र

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

मन की आदतों एवम् चित्तवृत्ति की आपाधापी की समाप्ति ही योग (समन्वय) है।

मन (विभेदकारी चित्तवृत्ति) का एक अन्य आयाम, जो कि मन के परे है (एकात्म बोध), के साथ समन्वय होना केवल तभी सम्भव है जब मन के षडयंत्रों, कल्पनाओं, शरारतों, विकारों तथा उन्मत्तता की पूर्णतः समाप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

तृतीय सूत्र

तदा द्रुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

अन्य आयाम की अनावृत्ति होने पर स्वरूपावस्था में स्थिति होती है।

समन्वय के पश्चात् एक परिवर्तित जीवनधारा आविर्भूत होती है, जिससे सहजावस्था की प्राप्ति होती है, जिसमें शरीर केवल ग्रंथियों और चक्रों से निर्देश प्राप्त करता है। मानसिक चांचल्य अथवा विचारों की आपाधापी ऐसा कोई हस्तक्षेप नहीं कर पाता है जिससे कि मनो–कायिक समस्याओं अथवा □भ्रांतियों की उत्पत्ति हो।

अंतिम सूत्र

पुरूषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः

कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।

अहंकार शून्यता एक ऐसी प्रक्रिया को जन्म देती है जिसमें मनुष्य अपने को सद्गुणों के प्रवाह में पाता है जिसकी चरम परिणति स्वरूपावस्था में शाश्वत अवस्थिति है यानी ऐसी ऊर्जा से समन्वित हो जाना है जो कि परम प्रबोधयुक्त है। इति।

व्यक्ति यानी संज्ञा का विलीन होना ही दिव्य लीला अर्थात् क्रिया की शुरूआत होना है और अंततः यह शाश्वत स्वरूपावस्था में प्रस्ङ्गुटित होती है जो कि एक ऐसी ऊर्जा के साथ सम्बन्धित है जिसमें बहुत समझदारी□भी है। अब मन पूर्णतः निश्चल हो चुका है।